

# संकल्प -

(राष्ट्र नवरचना की दिशा में पहल)



‘जय मातृभूमि’ साप्ताहिक के उद्घाटन अवसर पर, लोकनायक श्री जयप्रकाश नारायण की उपस्थिति में तथा बिहार के मुख्यमंत्री माननीय श्री कर्पूरी ठाकुर की अध्यक्षता में, 8 अक्टूबर 1978 को पटना में श्री नानाजी देशमुख का भाषण।

“नानाजी ने सत्ता और पद का मोह त्याग कर जनसेवा का जो निर्णय लिया है उसका मैं हृदय से स्वागत करता हूँ। वर्तमान परिस्थिति में यह निर्णय विशेष महत्त्वपूर्ण और अधिक उपयोगी है। मैं आशा करता हूँ कि राष्ट्र के प्रति सेवा भाव रखने वाले युवा-राजनीतिज्ञ नानाजी का अनुसरण करेंगे।”

— जय प्रकाश नारायण

**दीनदयाल शोध संस्थान**

७-ई, स्वामी रामतीर्थ नगर,

नई दिल्ली - ११० ०५५

**20** अप्रैल 1978 को मैंने राजधानी के पत्रकार बन्धुओं के समक्ष अपने मन का यह भाव प्रकट किया था कि युवा-पीढ़ी की कार्य-शक्ति को रचनात्मक दिशाओं में प्रवाहित करने के लिए कुछ वरिष्ठ एवं प्रभावशाली नेताओं को राजसत्ता से अलग होकर रचनात्मक कार्य का प्रत्यक्ष उदाहरण प्रस्तुत करना चाहिए। उसी समय मैंने अपना यह व्यक्तिगत संकल्प भी घोषित किया था कि एक साधारण कार्यकर्ता के नाते मैं अपनी शेष आयु को युवा-पीढ़ी के साथ सहयोग करते हुए देश की सामाजिक-आर्थिक पुनर्रचना की दृष्टि से कुछ रचनात्मक प्रयोगों में व्यतीत करना चाहूँगा।

मेरे लिए यह बहुत सन्तोष और उत्साह की बात है कि मेरी इस विनम्र घोषणा की ओर सम्पूर्ण देश का ध्यान आकर्षित हुआ। देश भर के समाचारपत्रों, युवा संगठनों, राजनीतिक तथा बुद्धिजीवी क्षेत्रों में उस पर प्रतिक्रिया और चर्चा हुई। इस राष्ट्रीय बहस का मैं स्वागत करता हूँ क्योंकि यह मेरे लिए बहुत ही उद्बोधक एवं प्रेरक सिद्ध हुई है। इस बहस का गंभीर अध्ययन करने पर मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि मेरे मूल विचार का स्वागत करते हुए भी कुछ लोगों को यह विश्वास नहीं हो पा रहा है कि अपने जीवन का लम्बा भाग राजनीति में खपा देने एवं राजनीति में आगे बढ़ जाने के पश्चात् क्या कोई राजनीतिज्ञ सचमुच रचनात्मक कार्य में लगने का विचार कर सकता है? ऐसे विचार को सच्चे हृदय से क्रियान्वित कर सकता है? कुछ लोगों को यह शंका हुयी कि कहीं इस कथन के पीछे कोई राजनीतिक चाल तो नहीं है! कुछ बन्धुओं ने इसे सत्तारूढ़ दल की आन्तरिक स्पर्धा राजनीति से जोड़कर कुछ नेताओं को सत्ता से हटाने की सुनियोजित व्यूहरचना ही मान लिया। मैं इन शंकालु बन्धुओं को इसके लिए कतई दोषी नहीं ठहराता। उनके मन की ये शंकाएँ भारत की राजनीतिक कार्यप्रणाली, उस कार्यप्रणाली में से निकले नेतृत्व और उपजी राजनीतिक संस्कृति के प्रति जनमानस में व्याप्त गहरी अनास्था का ही परिचायक हैं। इस अनास्था को उत्पन्न करने के लिए समाज नहीं, राजनीतिक नेतृत्व स्वयं दोषी है।

**तर्क नहीं कृति चाहिए**

मैं समझता हूँ कि इन शंकाओं का निवारण केवल शाब्दिक तर्कवाद द्वारा संभव नहीं है। इसके लिए कथनी और करनी में विद्यमान अन्तर को दूर करना होगा। मैं अन्य राजनीतिक कार्यकर्ताओं की ओर से कुछ कह सकने की स्थिति में नहीं हूँ। किन्तु अपनी ओर से देशवासियों को यह बताना आवश्यक समझता हूँ कि मेरे संकल्प को कार्यरूप में परिणित करने का समय आ पहुँचा है। 11 अक्टूबर 1978 को मेरी आयु के 62 वर्ष पूरे हो रहे हैं। गत वर्ष आयु के 61 वर्ष पूरे होने पर मैंने अपने मन ही मन यह संकल्प किया था। तभी से मैं अपने मन, मस्तिष्क को इस दिशा में तैयार करने एवं अपने वर्तमान राजनीतिक दायित्वों से धीरे-धीरे मुक्त होने की दिशा में आगे बढ़ता रहा हूँ। अब मैं यह सार्वजनिक घोषणा करने की स्थिति में हूँ कि 11 अक्टूबर से मैं सत्ता और दलगत राजनीति से अलग होकर अपने समय को पहले से प्रारंभ हुए एवं आवश्यकतानुसार नवीन रचनात्मक कार्यों में लगा सकूँगा।

गत अप्रैल मास में मेरे मनोभाव की सार्वजनिक अभिव्यक्ति को लेकर जो राष्ट्रीय बहस छिड़ी थी, उसके अध्ययन से मुझे यह आवश्यक प्रतीत होता है कि देशवासियों को अपने

इस निश्चय से अवगत कराते समय मुझे अपनी उस विचार प्रक्रिया को भी विस्तारपूर्वक देशवासियों के समक्ष रखना चाहिए जिसने मुझे इस निर्णय पर पहुँचाया है। यह एक प्रकार से मेरे 20 अप्रैल 1978 के सूत्रमय वक्तव्य की व्याख्या मात्र होगी।

आज से 44 वर्ष पूर्व सन् 1934 में एक छात्र के रूप में मेरा जीवन सार्वजनिक कार्य से जुड़ा था। तब देश के वायुमंडल में स्वाधीनता आंदोलन के नारे गूँज रहे थे। भावुक युवा अन्तःकरण में देश की स्वाधीनता के लिए छटपटाहट सर्वव्यापी थी। स्वाधीन भारत के कितने ही उदात्त और आकर्षक सपने उस संघर्ष युग की युवा आँखों में तैर रहे थे। स्वतंत्रता प्राप्ति के 31 वर्ष पश्चात् जब मैं स्वाधीन भारत के वर्तमान दृश्य पर दृष्टिपात करता हूँ तो मन में सहसा ही यह प्रश्न खड़ा हो जाता है कि क्या स्वाधीन भारत का यही चित्र है जिसका निर्माण करने के लिए देश ने अनेक पीढ़ियों तक स्वाधीनता के लिए लम्बी और विकट लड़ाई लड़ी थी? दयानन्द-विवेकानन्द से लेकर गाँधी तक, और लोकमान्य तिलक से लेकर नेताजी सुभाष बोस तक महापुरुषों की वह मालिका, जिसने हमारे स्वाधीनता संग्राम का जीवन-दर्शन गढ़ा, उसके लिए त्याग और बलिदान की नींव तैयार की और अन्ततः उसे सफलता प्राप्त करा दी, यदि स्वाधीन भारत में एकाएक अवतरित हो जाए तो आज का दृश्य देखकर उन्हें कैसा लगेगा? इस दृश्य में उन्हें अपने सपनों की पूर्ति दीखेगी अथवा समाधि?

### स्वाधीनता की लड़ाई क्यों?

इन प्रश्नों की भूलभुलैया में उलझकर जब मैं स्वाधीनता आन्दोलन की मूल प्रेरणाओं को टटोलने की कोशिश करता हूँ तो निम्न सूत्र मेरी पकड़ में आते हैं : —

1. स्वाधीनता की हमारी लड़ाई केवल राजनीतिक लड़ाई नहीं थी जिसका लक्ष्य राजसत्ता को विदेशी हाथों से छीनकर देशी हाथों को सौंपने तक सीमित हो, अपितु यह दो सभ्यताओं का संघर्ष था, सच्चे अर्थों में एक सांस्कृतिक युद्ध था। भारत में ब्रिटिश साम्राज्यवाद की स्थापना के साथ ही पश्चिम में उपजी औद्योगिक सभ्यता का भी प्रवेश हुआ था और उन्नीसवीं शती की भारतीय मनीषा ने इसे सभ्यता की चुनौती के रूप में स्वीकार किया था। स्वाधीनता संग्राम के दार्शनिकों और अग्रणियों ने स्पष्ट शब्दों में घोषणा की थी कि भारत इस औद्योगिक सभ्यता की बाढ़ में प्रवाह पतित के समान कदापि नहीं बहेगा अपितु अपने पूर्वजों द्वारा प्रदत्त श्रेष्ठ जीवनदर्शन, वैज्ञानिक समाज रचना तथा अखंड अनुभव परंपरा के प्रकाश में अपनी मौलिक प्रतिभा से मानवीय मूल्यों पर आधारित तथा विज्ञान के आधुनिक आविष्कारों को ध्यान में रखकर युगानुकूल एक ऐसी नवीन सामाजिक एवं आर्थिक रचना खड़ी करेगा जो शेष विश्व के लिए भी अनुकरणीय बन सके। विवेकानन्द, अरविन्द, तिलक एवं गाँधी आदि मनीषियों ने बार-बार दोहराया था कि नियति द्वारा निर्धारित अपने इस जीवन लक्ष्य की पूर्ति के हेतु ही भारत स्वाधीनता के लिए संघर्ष कर रहा है। अतः भारत की स्वाधीनता केवल उसके अपने हित में नहीं बल्कि सम्पूर्ण विश्व के लिए आवश्यक है।
2. स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करते हुए भी भारतीय मनीषा भावी समाज रचना के नियामक सिद्धान्तों व आदर्शों की खोज में लगी रही। गरीबी की रेखा के नीचे जी रहे कोटि-कोटि भारतवासियों को जीवन की न्यूनतम आवश्यकताएँ उपलब्ध कराते हुए उच्चतर जीवन की ओर बढ़ने की सुविधा प्रदान करना। शताब्दियों से चली आ रही सामाजिक और आर्थिक विषमता की खाई को पाटना। आधुनिक विज्ञान द्वारा प्रदत्त शरीर सुख के अनेक नये-नये उपकरणों का उपयोग करते हुए भी "सादा जीवन उच्च विचार" के सनातन आदर्श को सामने रखकर ही व्यक्तिगत एवं पारिवारिक जीवन स्तर का

मापदण्ड निर्धारित करना और व्यक्ति के भौतिक व आध्यात्मिक विकास में संतुलन कायम करना।

3. धर्म, भाषा, क्षेत्रीयता व जातिवाद के कारण उत्पन्न भेदों को आसेतु हिमाचल सम्पूर्ण राष्ट्र के प्रति भक्ति की गंगा में डुबोकर एकरस शक्तिशाली राष्ट्र जीवन खड़ा करना।
4. एक ऐसी राजनीतिक एवं संवैधानिक रचना को खड़ा करना जो राष्ट्रीय एकता को पुष्ट करने के साथ-साथ प्रत्येक भारतीय को राष्ट्र-निर्माण और राष्ट्र-जीवन के संचालन की प्रक्रिया में सहभागी होने का अवसर प्रदान कर सके।
5. राष्ट्र की नवीन आर्थिक-सामाजिक व राजनीतिक रचना को प्रतिबिम्बित करने वाले नागरिकों का विकास करने वाली शिक्षा-प्रणाली का आविष्कार करना।

किन्तु स्वाधीनता संघर्ष काल के इन प्रेरणा सूत्रों के प्रकाश में जब हम स्वाधीन भारत के आज के चित्र पर दृष्टि डालते हैं तो क्या दिखाई देता है? क्या हम उपरोक्त राष्ट्रीय लक्ष्यों की पूर्ति की दिशा में एक पग भी आगे बढ़े हैं? राष्ट्र जीवन के आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, शैक्षणिक आदि किसी भी क्षेत्र में क्या हम अपने राष्ट्रीय आदर्शों के अनुरूप कोई भी मौलिक रचना खड़ी कर पाये हैं? विगत 30 वर्षों में जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में प्रगति के नाम पर जो कुछ हुआ है उसे पश्चिमी अर्थरचना के अन्धानुकरण के अलावा और क्या कहा जा सकता है? प्रत्यक्ष कृति के क्षेत्र में स्वाधीन भारत द्वारा स्वाधीनता आंदोलन की मूल प्रेरणाओं से इस संबंध विच्छेद का कारण क्या है? क्या स्वाधीनता आंदोलन की ये प्रेरणाएँ ही गलत थीं अथवा स्वाधीन भारत उनके प्रति शाब्दिक निष्ठा का बार-बार उद्घोष करते हुए गलत मार्ग पर भटक गया है?

युगानुकूल समाज रचना के आविष्कार का कार्य केवल बौद्धिक व्यायाम के द्वारा पूरा होना संभव नहीं है। बनी बनायी आयातित विचारधाराओं के दायरे में बहस के द्वारा कभी भी नवस्वतंत्र राष्ट्र का नवनिर्माण नहीं हुआ करता। उसके लिए व्यक्तिगत, पारिवारिक एवं सामूहिक आचरण के क्षेत्र में लंबे एवं बहुविध प्रयोगों की प्रक्रिया से गुजरना अनिवार्य होता है। प्रत्यक्ष आचरण की प्रयोगशाला की भट्टी में तपकर ही नवनिर्माण का साँचा तैयार हुआ करता है। इसीलिए हम देखते हैं कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद के साथ भारत की लड़ाई के दौरान दो धाराएँ साथ-साथ बहती रही हैं। एक राजनीतिक आंदोलन की तो दूसरी रचनात्मक प्रयोगों की। बंगभंग आंदोलन के समय से ही राष्ट्रीय शिक्षा के क्षेत्र में अनेक प्रयोग प्रारंभ हो गये थे। गाँधी जी ने तो केन्द्रीय जीवनदर्शन की धुरी के चारों ओर आहार-विहार से लेकर आर्थिक-सामाजिक रचना तक सर्वाङ्गीण राष्ट्रीय पुनर्निर्माण की दिशा में अनेक प्रयोग प्रारंभ किये थे।

वस्तुतः गाँधी जी की दृष्टि में इन रचनात्मक प्रयोगों का स्थान राजनीतिक संघर्ष से कम महत्व का नहीं था। राजसत्ता उनके लिए राष्ट्र निर्माण के अनेक साधनों में से एक साधन थी -- सर्वस्व नहीं। अतः राजनीति उनकी गतिविधियों का केन्द्र बिन्दु न होकर एक पूरक अंग मात्र थी।

### सत्ता केन्द्रित राजनीति का उदय

स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् सत्ता को ही राष्ट्र निर्माण का एकमात्र साधन मान लिया गया। इसीलिए सत्ताभिमुखी राजनीति संपूर्ण सार्वजनिक जीवन पर छा गई। परिणामस्वरूप गत 30 वर्ष में सामाजिक, शैक्षणिक या राष्ट्रीय जीवन के अन्य किसी भी क्षेत्र में नेतृत्व का विकास न हो पाया। सत्ता के आंगन में प्रवेश करना ही प्रत्येक का लक्ष्य बन गया। संसद और विधान सभाओं की 5000 सीटों के लिए छीनाझपटी और जोड़तोड़ का नाम ही

स्वाधीन भारत की राजनीति बन गयी। येन-केन-प्रकारेण चुनाव जीतना, विधान सभा या लोक सभा में प्रवेश हो जाने के पश्चात् मंत्रिपदों की ओर आगे बढ़ने का रास्ता खोजना— यही है संक्षेप में राजनीतिक कार्यकर्ता की प्रातः से रात्रि तक की दौड़धूप का मर्म। सत्ता प्राप्त करना और प्राप्त सत्ता को किसी भी प्रकार अपने हाथ से निकलने न देना — यही आज अधिकांश भारतीय राजनीतिज्ञों की मुख्य प्रेरणाएँ हैं। स्वाभाविक ही, इस मानसिकता ने ऐसी कार्यप्रणाली को जन्म दिया, जिसमें जनजीवन से प्रत्यक्ष नाता जोड़कर जन-सहयोग से सामाजिक आर्थिक परिवर्तन की प्रक्रिया को खड़ा करने की बजाय सस्ती प्रदर्शनकारिता, विरोध के लिए विरोध एवं जोड़तोड़ के द्वारा चुनाव जीतने को ही सर्वोपरि महत्व दिया जाने लगा। प्रेस, प्लेटफार्म और प्रोटेस्ट पर आधारित कार्यप्रणाली ने ऐसे-ऐसे नेताओं को उभारकर सामने लाया है जो राष्ट्र के सामने विद्यमान सामाजिक-आर्थिक समस्याओं में गहरे पैठकर उनका व्यावहारिक हल खोजने की बजाय भेदों पर चलने वाली — संकुचित निष्ठाओं को उभाड़ने, जनमानस को भ्रमित करने के लिए आकर्षक वादों और उत्तेजक नारों को उछालने को ही राजनीतिक सफलता की एकमात्र कुँजी मानने लगा है। निश्चय ही, जोड़तोड़ और आंदोलन की राजनीतिक कार्यशैली में से उभरे हुए नेतृत्व के हाथों राष्ट्र निर्माण के लिए सत्ता का रचनात्मक उपकरण बन पाना असंभव है। राष्ट्र निर्माण हेतु सत्ता का रचनात्मक प्रयोग करने के लिए आवश्यक है कि सत्ताधारी को प्रत्यक्ष जनसहयोग, गहन चिन्तन एवं रचनात्मक प्रयोगों के माध्यम से समस्याओं के स्वरूप एवं उनके हल का व्यवहारिक ज्ञान हो। दुर्भाग्य से वर्तमान राजनीतिक कार्यशैली में इस रचनात्मक दृष्टि की कोई उपयोगिता ही नहीं रह गई। क्योंकि येन-केन-प्रकारेण चुनाव जीत जाना ही राजनीतिक सफलता की एकमात्र कसौटी बन गयी है।

इसका ही परिणाम है कि विगत तीस वर्षों में राष्ट्र के सामाजिक-आर्थिक पुनर्निर्माण की दिशा में स्वाधीनता की मूल प्रेरणाओं एवं आदर्शों के अनुरूप आधारशिलाएँ तो रख ही नहीं पाये, उल्टे स्वतंत्रता संग्राम के दौरान उपजी राष्ट्रीय एकता को दुर्बल बनाने तथा सामाजिक एवं धार्मिक भेदों का पोषण करने की, भारतीय राजनीतिज्ञों द्वारा, भयंकर भूल हो रही है। अब तो यह लगने लगा है कि सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक भेद कायम रखने में ही राजनीतिज्ञों का निहित स्वार्थ हो गया है। अतः वर्तमान राजनीतिक प्रक्रिया के द्वारा राष्ट्र के सामाजिक-आर्थिक पुनर्निर्माण के लक्ष्य की पूर्ति तो दूर, बची-खुची राष्ट्रीय एकता भी खतरे में पड़ गई है। वस्तुतः इस संकट के लिए किसी विशिष्ट विचारधारा, दल अथवा व्यक्ति विशेष को दोषी नहीं ठहराया जा सकता। यह संकट प्रचलित राजनीतिक कार्यशैली की ही देन है।

### समग्र क्रान्ति आंदोलन क्यों ?

सर्वप्रथम लोकनायक जयप्रकाश जी ने राष्ट्र के इस रोग की जड़ को पकड़ा। उन्होंने अनुभव किया कि विगत 30 वर्ष में हमारी राष्ट्रीय यात्रा एक भटकाव की यात्रा रही है। उसका स्वाधीनता आन्दोलन के दौरान निरूपित राष्ट्रीय लक्ष्यों से संबंध विच्छेद हो चुका है और वह सत्ता के चारों ओर घूमने वाली बाँझ शैली के भंवर में फँस चुकी है। उसके भीतर से श्रेष्ठ, अनुशासित एवं उद्देश्यपूर्ण राष्ट्रजीवन का निर्माण असंभव है। इसलिए लोकनायक ने संपूर्ण क्रान्ति का नारा देकर जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में राष्ट्रीय आदर्शों की पुनर्व्याख्या की आवश्यकता प्रतिपादित की। लोकनायक जयप्रकाश जी के संपूर्ण क्रान्ति आंदोलन का लक्ष्य एक दल को हटाकर दूसरे दल को सत्तारूढ़ करना नहीं था अपितु सत्ताभिमुखी राजनीतिक कार्यशैली का स्वस्थ विकल्प ढूँढ़ना था और एक प्रबल रचनात्मक आंदोलन की सृष्टि कर राजशक्ति पर रचनात्मक लोकशक्ति की महत्ता को पुनःप्रतिष्ठित करना था।

जयप्रकाश जी के रूप में स्वतंत्रता संग्राम की प्रथम पंक्ति में लड़ने वाले एक तपोपूत सत्ताविमुख, दल निरपेक्ष एवं निस्पृह व्यक्तित्व के मैदान में कूद पड़ने से जनमानस में — विशेषकर युवा-पीढ़ी में अभूतपूर्व आशावाद एवं उत्साह का संचार हुआ। जयप्रकाश जी जिन्हें राजनीतिक दृष्टि से लगभग निष्प्राण घोषित कर दिया गया था, रातोंरात भारत के सार्वजनिक जीवन के आकाश पर सबसे प्रबल शक्ति-ध्रुव बनकर उदित हो गये। उनका उपहास करने वाले राजनीतिज्ञों एवं दलों को भी उनके पीछे खड़े होने का निर्णय लेना पड़ा। जयप्रकाश जी का यह आकस्मिक पुनरोदय इस बात का प्रमाण है कि राष्ट्रीय मानस विगत 30 वर्ष की राजनीतिक कार्यशैली एवं उसमें से जन्मी राजनीतिक संस्कृति के प्रति तिरस्कार से भरा हुआ था और उसके विकल्प की खोज में व्याकुल था।

जयप्रकाश जी का व्यक्तित्व जुड़ जाने के कारण भारतीय राजनीति को कुछ समय के लिए पुनः एक नैतिक अधिष्ठान प्राप्त हुआ। उनके नैतिक बल के कारण ही प्रबल जनान्दोलन की सृष्टि हुयी, सत्ता का आसन डोल गया और आत्मरक्षा में उसे लोकतंत्र की पीठ में आपात स्थिति की घोषणा का छुरा भोंकने का सहारा लेना पड़ा। आपातकालीन अत्याचारों की तीव्र प्रतिक्रिया तथा जे० पी० के आंदोलन से उत्पन्न नैतिक वातावरण के फलस्वरूप ही केन्द्र में सत्ता परिवर्तन का अभूतपूर्व व अकल्पित चमत्कार घटित हो सका।

### सत्ता बदली पर कार्यशैली वही

जयप्रकाश के नेतृत्व और समग्र क्रान्ति आंदोलन की पृष्ठ-भूमि में घटित सत्तापरिवर्तन ने राष्ट्र के उज्ज्वल भविष्य के प्रति एक बार फिर वैसी ही उमंग, उत्साह एवं आशावाद का वातावरण उत्पन्न कर दिया था जैसा कि सन् 1947 के पूर्व स्वतंत्रता प्राप्ति के समय प्रगट हुआ था। निश्चय ही भावद्विवलता की इस मनःस्थिति का लाभ उठाकर राष्ट्र की कर्मशक्ति को रचनात्मक दिशाओं में प्रवाहित किया जा सकता था। जागृत लोक-शक्ति पर अधिष्ठित एक स्वच्छ एवं उदात्त सार्वजनिक जीवन को खड़ा करना संभव था। किन्तु इसे राष्ट्र के दुर्भाग्य के अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है कि इस सत्ता परिवर्तन में ही लोकनायक के समग्र क्रान्ति आंदोलन की इतिश्री मानी गयी और देश का राजनीतिक नेतृत्व सत्ता प्राप्ति की उठापटक में व्यस्त हो गया। परिणामस्वरूप, जागृत लोकशक्ति के निर्माण के लिए राष्ट्र के नाम लोकनायक का आह्वान अरण्यरोदन मात्र बनकर रह गया। सत्ता और दलों की राजनीति का विकल्प ढूँढने वाला समग्र क्रान्ति आन्दोलन भी मानो सत्ता और दलगत राजनीति की भंवर में फँसकर रह गया। वरिष्ठ नेतृत्व की देखादेखी समग्र क्रान्ति आंदोलन की रीढ़ कहलाने वाला युवा शक्ति भी टिकटों और मंत्रिपदों के लंबे क्यू में खड़ा हो गयी। राजसत्ता को ही सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन के एकमात्र माध्यम के रूप में फिर से प्रस्तुत किया जाने लगा और पुनः सत्ताभिमुखी राजनीति सम्पूर्ण सार्वजनिक जीवन का केन्द्र बिन्दु बन गयी। फिर वही टिकटों और मंत्रिपदों के लिए जोड़तोड़ और राजनीतिक स्वार्थों की पूर्ति के लिए जातिवाद, भाषावाद, क्षेत्रीयता, साम्प्रदायिकता के दानव को उभाड़ने के राष्ट्रघाती प्रयत्न और वही चरित्रहनन की ओछी प्रक्रिया चल पड़ी। इससे अधिक और पीड़ा की बात क्या हो सकती है कि आपातकाल की भट्टी में धुन जाने के बाद भी भारत की राजनीतिक संस्कृति में कोई गुणात्मक परिवर्तन नहीं हुआ और वही पुरानी धिनौनी राजनीति ज्यों की त्यों वापस लौट आई। वस्तुतः प्रत्यक्ष जन सहयोग पर आधारित रचनात्मक कार्यशैली के अभाव में आत्मप्रचार, आंदोलन और जोड़तोड़ पर आधारित वर्तमान राजनीति के गर्भ से इससे भिन्न चरित्र की राजनीतिक संस्कृति का जन्म असंभव है।

### समय की पुकार

राष्ट्रीय राजनीति के इस पतन और दिशा भ्रम का युवा पीढ़ी पर जो परिणाम होना चाहिए था वही हुआ। युवा पीढ़ी जो समग्र क्रान्ति आंदोलन में उभरकर आगे आई, आपातकालीन

अधिनायकवाद के विरुद्ध हुए संघर्ष में जिसने साहस और बलिदान का परिचय दिया, हताश और थके हुए विपक्षी नेतृत्व को सत्ता के सिंहासन पर आरूढ़ करने में अपना योगदान किया, वही युवा पीढ़ी आज फिर से अपने पथ से भटक गई है। योग्य रचनात्मक नेतृत्व के अभाव में वह पुनः निरुद्देश्य आंदोलन, उल्लंखलता और विध्वंस के पथ पर बढ़ रही है। युवा-पीढ़ी की कर्मशक्ति को रचनात्मक कार्यों में लगाना है तो उसके सामने प्रत्यक्ष आचरण का उदाहरण प्रस्तुत करना होगा। युवा-पीढ़ी को यह विश्वास दिलाना होगा कि राजकाज के लिए सत्ता ही सर्वस्व नहीं है। इसी बात को ध्यान में रखकर मैंने अपने 20 अप्रैल 1978 के वक्तव्य में विनम्रतापूर्वक सुझाव दिया था कि इस आत्मघाती दिशा को नया मोड़ देने के लिए कुछ वरिष्ठ एवं प्रभावशाली राजनेताओं को स्वेच्छा से सत्ता छोड़कर रचनात्मक कार्य का ठोस उदाहरण युवा-पीढ़ी के सम्मुख प्रस्तुत करना चाहिए। विगत 30 वर्षों के अनुभवों के प्रकाश में अब हमें उपर्युक्त कटु सत्य को सार्वजनिक रूप में और खुले मन से स्वीकार कर, आत्मविश्वास तथा दृढ़ निश्चय के साथ रचनात्मक कार्यशैली के विकास में जुट जाना चाहिए। जनमानस तीव्रता से अनुभव कर रहा है कि उसे अब आन्दोलनात्मक या जोड़तोड़ में प्रवीण नेतृत्व की नहीं — रचनात्मक प्रवृत्ति के एवं रचनात्मक प्रयोगों की अनुभूति की भट्टी में पके नेतृत्व की आवश्यकता है। अतः हमें रचनात्मक कार्यप्रणाली का ही अवलंबन करना होगा। यह कार्यप्रणाली समाज में से रचनात्मक प्रवृत्ति के युवा नेतृत्व को आकर्षित कर सकेगी। आज यही देश की आवश्यकता है।

### मेरा संकल्प

यहाँ प्रश्न खड़ा होता है कि आज की स्थिति में इस कठिन दायित्व को कौन संभाले? लोकनायक के स्वास्थ्य की वर्तमान स्थिति को देखते हुए उन पर यह बोझ डालना उनके प्रति अन्याय होगा। लोकनायक के आदर्शों के प्रति सच्ची आस्था रखने वाले लोगों को ही अब यह दायित्व ग्रहण करना और अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगाकर उनके जीवन काल में ही रचनात्मक लोकशक्ति के निर्माण के उनके स्वप्न को साकार करना होगा। यह स्मरण कर मुझे बड़ा गर्व और संतोष का अनुभव होता है कि लोकनायक के समग्र क्रान्ति के आह्वान की ओर सर्वप्रथम आकर्षित होने वाले मुट्ठी भर राजनीतिक कार्यकर्ताओं में मैं भी एक था। अनेक वर्षों से चुनाव राजनीति की प्रक्रिया का अभिन्न अंग होने के बाद भी समग्र क्रान्ति के आह्वान की ओर अपने आर्कषण का मूल खोजने की दृष्टि से जब मैं अपने अतीत को टटोलने की कोशिश करता हूँ तो मुझे दिखाई देता है कि जिस संगठनात्मक प्रक्रिया के माध्यम से सार्वजनिक जीवन में मेरा प्रवेश हुआ था वह मूलतः रचनात्मक तथा उदात्त जीवन मूल्यों के आधार पर सर्वाङ्गीण राष्ट्र निर्माण के एकमेव लक्ष्य से प्रेरित था। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् सन् 1950 में मैंने यदि राजनीति में प्रवेश किया तो स्वयं चुनाव लड़कर सत्ता प्राप्त करने के हेतु से नहीं, अपितु राजनीति और राजसत्ता को राष्ट्र निर्माण का रचनात्मक माध्यम बनाने के प्रयत्नों में अपना विनम्र योगदान देने की इच्छा से। मार्च 1977 में पहली बार मुझे श्रद्धेय जे० पी० के आदेश के कारण चुनाव के मैदान में उतरना पड़ा। वह भी आपातकालीन अधिनायकवाद के द्वारा उत्पन्न आतंक और भय की चुनौती को स्वीकार करने की विवशता के कारण ही।

वर्तमान राजनीतिक कार्य प्रणाली का 28 वर्ष तक अंतरंग परिचय प्राप्त कर लेने के पश्चात् अब मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि प्रचलित राजनीति के माध्यम से न तो रचनात्मक नेतृत्व का उभरकर आना संभव है और न राजसत्ता का रचनात्मक उपकरण बन पाना। इसके हल के लिए वर्तमान दलगत राजनीतिक कार्यप्रणाली के स्थान पर किसी वैकल्पिक रचनात्मक कार्यप्रणाली की खोज करनी होगी। अपनी अल्पक्षमता और दुर्बलताओं से अवगत होते हुए भी मैं अपनी शेष आयु को इस खोज कार्य के लिए ही समर्पित करने की

इच्छा रखता हूँ। स्वाभाविक ही, इसके लिए मुझे वर्तमान राजनीतिक दायित्वों से स्वयं को मुक्त करना होगा और चुनाव राजनीति से संबंध विच्छेद करना होगा। मैं जानता हूँ कि यह कहने में जितना सरल, करने में उतना ही कठिन है। मेरी ईश्वर से प्रार्थना है कि वह मेरे इस कठिन व्रत पालन के संकल्प को आवश्यक बल प्रदान करे।

यहाँ प्रश्न उठ सकता है कि मेरे रचनात्मक प्रयोगों का स्वरूप एवं कार्यक्षेत्र क्या होगा? मेरी भावी कार्यप्रणाली क्या रहेगी? इस संबंध में मुझे यह जानकारी देते हुए प्रसन्नता होती है कि ईश्वरीय प्रेरणा से उत्तर प्रदेश के गोण्डा जिले में कुछ माह पूर्व एक रचनात्मक प्रयोग प्रारंभ कर चुका हूँ। इन सब रचनात्मक गतिविधियों के केन्द्र का नाम जयप्रभा ग्राम रखा गया है।

“ग्रामोदय” के इस प्रयोग के निम्नलिखित लक्ष्य निर्धारित किये गये हैं : —

1. श्रम प्रधान विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था के राष्ट्रीय आदर्श को ध्यान में रखते हुए कृषि एवं औद्योगिक उत्पादन वृद्धि के लिए आधुनिक विज्ञान एवं टेक्नोलॉजी को भारतीय स्थिति के अनुरूप विकसित करना।
2. आर्थिक विषमता को मिटाते हुए समृद्ध एवं आत्मनिर्भर ग्राम जीवन की रचना करने की दृष्टि से भूमि संबंधों का पुनर्निर्धारण करना एवं कुटीर उद्योगों को लोकप्रिय बनाना।
3. जातिवाद, साम्प्रदायिकता एवं अस्पृश्यता आदि के भेदों को मिटाकर समरस, सौहार्दपूर्ण एवं परस्पर सहयोगी सामाजिक जीवन का निर्माण करना।
4. प्रत्येक व्यक्ति की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति करते हुए उसे नैतिक विकास के पथ पर बढ़ने के लिए अनुकूल वातावरण उत्पन्न करना।

व्यक्ति के आर्थिक, सामाजिक एवं नैतिक विकास के विविध लक्ष्यों पर आधारित उपरोक्त कार्यक्रम को एक वाक्य अर्थात् “सर्वाङ्गीण विकास के माध्यम से समग्र परिवर्तन” के अन्तर्गत रखा जा सकता है।

हमारा प्रयत्न है कि गोण्डा जिले के प्रयोग के माध्यम से कृषि विकास एवं ग्रामीण औद्योगीकरण के माध्यम से बेकारी उन्मूलन कर विषमतारहित समृद्धिशाली जनजीवन का विकास का अनुकरणीय आदर्श प्रस्तुत करना। इसी प्रकार के अनेक अन्य प्रयोगों को प्रारंभ करने की आवश्यकता है। इन सभी प्रयोगों का दायित्व युवा-पीढ़ी के कन्धों पर सौंपना होगा। इसके लिए उसमें समाज के पिछड़े, उपेक्षित एवं दुर्बल वर्गों की जिन्दगी में झांकने, उनके साथ समरस होने एवं उनके सुख दुख में सहभागी बनने की तड़पन जगानी होगी। इस कार्य में मुझे कितनी सफलता मिल पायेगी, यह कह पाना कठिन है। किन्तु यदि राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के इस कार्य को करते हुए मैं कुछ संवेदनशील युवा अन्तःकरणों को इन रचनात्मक प्रयोगों के अभियान के पथ पर आकर्षित कर सका तो मैं अपने जीवन को सार्थक मानूँगा और मेरे सन्तोष के लिए यही पर्याप्त होगा। इन्हीं शब्दों के साथ मैं स्वयं को रचनात्मक कार्यों के लिए समर्पित करता हूँ और राजनीतिक क्षेत्र के अपने उन सभी सहयोगियों से क्षमा मांगता हूँ जिन्हें अनजाने में मेरे किसी शब्द प्रयोग, व्यवहार या निर्णय से कोई मानसिक कष्ट पहुँचा हो। मुझे विश्वास है कि राष्ट्र सेवा के इस दुर्गम और अनजाने पथ पर कदम बढ़ाते समय मेरे आज तक के सभी सहयोगियों, मित्रों और समस्त देशवासियों के स्नेह और सहयोग का वरदहस्त मेरी पीठ पर सदैव विद्यमान रहेगा। अपनी जीवन-यात्रा के इस अन्तिम चरण में वही मेरा एकमात्र पाथेय होगा।